धर्म प्रचार
(आध्यात्मिक पक्ष)
भाग – ९

फूल, अन्तर्गत लिखे हुकुम (प्राकृतिक नियम) अनुसार :–

जीवन व्यतीत करता

खिलता

विकसित होता

प्रफुल्लित होता

महकता

गद–गद होता हुआ,

परमेशवर द्वारा प्रदान की गई '**बख्शिशों :–**

रंग

रस

सौन्दर्य

कोमलता

महक

नूर

चाव

खूशी

प्यार

आकर्षण,

को अनजाने ही, सहज स्वभाव :–

बिखेरता
प्रकाशित करता
बांटता हुआ

अपने 'आप' को दिन–रात न्यौछावर करता जाता है तथा उसके 'अस्तित्व मे से' इलाही जलवे का –

प्रकट होना
प्रकाशित होना
गरजना

ही, फूल का –

धर्म है
धर्म प्रचार है
भक्ति है
जीवन है
कल्याण है

तथा **'अवरह नामु जपावहु'** का प्रतीक है।

उपरोक्त उदाहरण में एक 'अन्तर' वाला तथ्य है। जिसको समझने की आवश्यकता है।

'फूल' की सारी क्रिया, **अनजाने ही** हो रही है, परन्तु गुरुमुख जन–

पूर्ण आत्मिक सूझ में,
सतिगुरू की श्रद्धा–भावना में,
प्रेम–स्वैपना के बहाव में, (In overflowing Divine love)

'हुकुम' का पालन करता हुआ, **'परोपकारी जीवन'** व्यतीत करता है।

ब्रहम गिआनी परउपकार उमाहा ॥ (पृ२७३)

इस तरह गुरमुख जन **'फूल'** की भांति सहज स्वभाव गुप्त रूप से तथा चुपचाप ही 'आपि जपहु अवरह नामु जपावहु' के –

आन्तरिक भाव
अनुभवी अर्थ
आत्मिक सूझ
'अकथ – कथा'
'तत्' ज्ञान
गुप्त भेद
आत्मिक प्रकाश

में, गुरबाणी की इस पंक्ति के आदेश का **पालन करता** हुआ, अपने जीवन में –

निजी अनुभव
अभ्यास कमाई
अनुभवी ज्ञान
कथनी – करनी
आत्मिक किरणों
प्रेम – छुह
प्रेम – निगाह

द्वारा – आत्मिक **'धर्म – प्रचार' कर रहा है।**

यह ही आत्मिक मंडल का पवित्र – पावन, **इलाही, अनुभवी धर्म प्रचार है। जो** उपरोक्त पंक्ति के सही आत्मिक आदेश का **प्रतीक** एवं **प्रकटाव है,** जिसकी आकर्षक, दामनिक प्रेम भावना के **प्रभाव** (magnetic inspiration of Divine love) से जिज्ञासु का **शारीरिक, मानसिक** तथा **आत्मिक जीवन पूर्णतया बदल जाता है।**

कबीर सतिगुर सूरमे बाहिआ बानु जु एकु ॥
लागत ही भुइ गिरि परिआ परा करेजे छेकु ॥ (पृ. १३७४)

बेगम पुरा सहर को नाउ॥
दूखु अंदोहु नही तिहि ठाउ॥
नां तसवीस खिराजु न मालु ॥
खउफु न खता न तरसु जवालु ॥ (पृ. ३४५)

उपरोक्त दर्शाये गये **आत्मिक तथ्य,** अति – सूक्ष्म तथा **सार – रुप हैं,** इसलिए इन्हें और अधिक स्पष्ट करने के लिए, विस्तार पूर्वक वर्णन किया जाता है।

सूर्य में बहुत से गुण हैं, जो उसकी **'धूप द्वारा'** प्रकाशित एवं प्रकट हो रहे हैं। इसी प्रकार अकाल पुरुष के अनगिनत गुण, इलाही 'जीवन – रौं', 'शबद', 'नाम' आदि, **इलाही हुकुम द्वारा** प्रकट तथा प्रकाशित हो रहे हैं । इन अनगिनत ईश्वरीय गुणों में से श्रेष्ठ एवं **मूल गुण** इलाही **'प्रीत, प्रेम, प्यार' है। शेष अन्य समस्त ईश्वरीय गुण, इलाही प्रीत, प्रेम,** प्यार की ही –

किरणें है
प्रकटाव है
प्रकाश है
शक्ति है
महक है
उमाह है
लाड है
स्नेह है।

इसी कारण अकाल पुरुष को **'प्रीतम', 'अति प्रीतम', 'प्रेम पुरुष'** आदि शब्दों से संबोधित किया गया है। **प्रभु प्रति – मां, बाप,** बंधप, साहिब, **साजन, प्रिय** आदि के **सम्बंध,** उसी प्रीत – प्यार के **प्रतीक तथा उदाहरण हैं।**

'प्रीत – प्रेम – प्यार' के सूक्ष्म मनोभावों की अत्यन्त कोमल **प्रेम – भावनाओं** तथा **प्रेम स्वैपनाओं' द्वारा,** इलाही प्रेम – राग की अनेक राग – रागनियों की **अनहद धुन,** अपने – आप, सहज – स्वभाव उत्पन्न होती, विकसित होती, थर – थराती, लहराती हुई, जिज्ञासु की अन्तर – आत्मा में, **हृदय की कोमल तारों को झंकृत कर जाती है** तथा **मन' को अलमस्त मतवारा कर देती है और जिज्ञासु अपने – आप ही कह उठता है –**

खूबु खूबु खूबु खूबु खूबु तेरो नामु।।
झूठु झूठु झूठु झूठु दुनी गुमानु।। (पृ. ११३७)

सुनहु लोका मै प्रेम रसु पाइआ।। (पृ. ३७०)

अनहद धुनी मेरा मनु मोहिओ अचरज ता के स्वाद ।। (पृ. ११३७)

इस पवित्र – पावन **इलाही प्रेम में –**

इन्तजार है
आकर्षण है
सेवा भाव है
कुरबानी है
‘आपा’ न्यौछावर करना है
‘भला मनाइदा’ है
‘सद बरवसिदु’ है
‘सद मिहरवान’ है
‘अउगुण को न चितारदा’ है
गुर प्रसाद है
सच है।

यह समस्त इलाही गुण, **कहीं बाहर से ग्रहण नहीं किये जा सकते,** परन्तु गुरुमुरव प्यारों की अन्तर – आत्मा में हृदय के ‘स्त्रोत’ में से, सहज स्वभाव ही, गुरू कृपा द्वारा प्रस्फुटित हो जाते हैं, जिस तरह ‘माँ – प्यार’ या **‘मोह’, बच्चे के जन्म के साथ ही,** माँ के हृदय में प्रस्फुटित होता है।

जीव की अन्तर – आत्मा में, इलाही **‘ज्योति’** है। इसलिए सारे इलाही गुण भी, आदि से ही अन्तर – आत्मा मे **गुप्त रूप से परिपूर्ण हैं।**

एक ओर तो इलाही ‘प्रीत – तरंगें’, ‘प्यार – उछाल’, तथा ‘प्रेम – स्वैपना’ – जीव की **आत्मा में से,** उसके मन, तन, बुद्धि द्वारा, फूल की सुगन्धि की भांति **बाहर की ओर** प्रकट तथा **प्रकाशित होने के लिए आतुर होती है।**

दूसरी ओर – अकाल पुरुष अपनी इलाही बरिव्शश द्वारा, अपने **‘अंश – रूप’ जीवों को,** अपनी **आकर्षक ‘प्रेम – डोरी’ द्वारा,** अपनी स्नेहमयी गोद की ओर, **चुम्बकीय ‘आकर्षण’ से रवींच रहा है।**

पूरब करम अंकुर जब प्रगटे भेटिओ पुरखु रसिक बैरागी।।
मिटिओ अंधरु मिलत हरि नानक जनम जनम की सोई जागी ।।(पृ. २०४)

उपरोक्त गुरबाणी की पंक्तियों अनुसार, बरव्शे हुए, ‘रसिक पुरखु बैरागी’, महापुरुषों का तन, मन, धन, गुरप्रसाद के जलवे के प्रकटाव तथा **प्रकाश के लिए माध्यम** (medium) या **प्रणाली बन जाता है।**

जब 'गुर प्रसाद' का **इलाही 'जलवा'** किसी गुरुमुख जन के **शरीर में से–**

'प्रस्फुटित' होकर
'अंग संग मौला' होकर
'प्रीत–प्रेम–रस' से ओत प्रीत होकर,
'गोबिंद गजिआ' होकर,

उसके तन–मन–बुद्धि द्वारा, बाहर की ओर **बह उठता है,** तब गुरुमुख प्यारे के तन, मन द्वारा इलाही धर्म–प्रचार सहज–स्वभाव अपने–आप हो रहा होता है।

इस प्रकार बख्शे हुए गुरुमुख जन–

सतिगुर तूठै पाईऐ साध संगति गुरमति गुरसिखी । (वा.भा.गु. २८/१)

गुरमुखि केती सबदि उधारी संतहु ।। (पृ. ९०७)

ब्रहम गिआनी परउपकार उमाहा ।। (प. २७३)

के इलाही उपदेशों का, सहज–स्वभाव ही **पालन कर रहा होता है** तथा आत्मिक **मंडल के अनुभवी धर्म का 'प्रचार' कर रहा होता है।**

इन गुरुमुख प्यारों–रसिक पुरख बैरागी हरिजनों में 'अहम' का **अभाव** होता है तथा वे सही अर्थ में, 'मैं–मेरी' की **रंगत को त्याग कर,** 'नानक घर के बे–खरीद' दास बन कर, दुनिया में **परोपकारी जीवन** व्यतीत करते हैं तथा साथ ही साथ अपने तथा संगी–साथियों का **जीवन सफल करते जाते हैं।**

उपरोक्त दर्शाये इलाही गुण तथा इलाही अनुभवी ज्ञान का **'प्रकाश'** ही, आत्मिक मंडल के **इलाही धर्म–'प्रचारकों' की 'योग्यता'** है। **इन आत्मिक धर्म–प्रचारकों को अन्य किसी दिमागी विधक या धार्मिक डिग्रियों की आवश्यकता नहीं है।** क्योंकि उनकी अन्तर–आत्मा में, पूर्ण **अनुभवी इलाही ज्ञान का प्रकाश होता है।** जिसके तीक्ष्ण **प्रकाश में,** हमारी चतुराईयों, उक्तियों–युक्तियों, फिलोस्फियों तथा ज्ञान–ध्यान के पंख जल जाते हैं।

आत्मिक ज्ञान का **'प्रकाश'** ही पूर्ण **तत्–ज्ञान** है, जिसके अनुभव द्वारा ही **आत्मिक प्रकाश की झलक अनुभव हो सकती है** तथा जिसके **'अक्स' तथा प्रकाश द्वारा** हमारी बुद्धि को **शक्ति तथा 'सूझ' प्राप्त होती है।** यह **'तत्–ज्ञान'** ही समस्त सांसारिक ज्ञान एवं योग्यता का स्त्रोत है। ऐसे तत् ज्ञान की खोज एवं प्राप्ति के लिए **उद्यम करने की ही आवश्यकता है।** इससे ही, अन्य समस्त दिमागी एवं पदार्थिक ज्ञान तथा योग्यताओं को **प्रकाश मिलता है।**

इसका तात्पर्य यह नहीं कि दिमागी पदार्थिक ज्ञान अर्जित नहीं करना। परन्तु, **मात्र दिमागी ज्ञान तथा** योग्यता में **गलतान** होकर **खो नहीं जाना।**

गुरुमुख प्यारों की संगत तथा नाम सिमरन द्वारा, हमने अपने शरीर, मन, बुद्धि, अन्तःकरण, अहम् तथा **सम्पूर्ण 'अस्तित्व'** को अपने प्रीतम सतिगुरू के **'प्रेम का रंग' चढ़ा–चढ़ा कर,** इलाही 'प्रीत, प्रेम, रस, चाव' में, **'अलमस्त–मतवारा' होकर,** 'नानक नानक नानक मयी', होना है तथा **दम–ब–दम सिमरन** द्वारा सतिगुरू जी के **सुन्दर प्रकाश मंडल में निवास करना है।**

इस प्रकार **फूल की सुगन्धि की भांति,** जब हमारे तन, मन, बुद्धि की **प्रणाली द्वारा,** इलाही प्रकाश के **'तत्–ज्ञान' का उजाला,** हमारी अन्तर–आत्मा में से **प्रस्फुटित होकर–**

मन
वचन
कर्म
नदर
छूह
सोच
व्यवहार
अनुभव
रोम–रोम

द्वारा–

अनजाने
गुप्त
सहज स्वभाव
स्वतः
अहम्–रहित

प्रकाशित तथा प्रकट होगा, तब हम सतिगुरू जी के निम्नांकित उपदेश का पालन कर रहे होंगे।

जगत उधारण सेई आए जो जन दरस पिआसा ।। (पृ. २०७)

जगतु उधारन संत तुमारे दरसनु पेखत रह अघाई।। (पृ. ३७३)

संत भगत गुरसिख हहि, जग तारन आए।। (वा.भा. गु. ४१/२०)

इस प्रकार, हमारे मन, तन, बुद्धि, अन्तःकरण तथा **'आत्मन' की प्रणाली के माध्यम से,** इलाही आत्मिक ज्ञान का **प्रस्फुटित होकर प्रकाशित होना ही,** आत्मिक मंडल के 'तत् ज्ञान' **का 'धर्म प्रचार' है।**

इस अवस्था में गुरुमुख प्यारे महापुरुषों का **जीवन –**

आपि जपहु अवरा नामु जपावहु ।।
सुनत कहत रहत गति पावहु ।। (पृ. २८९)

मुकति भुगति जुगति तेरी सेवा जिसु तूं आपि कराइहि ।। (पृ. ७४९)

आपु गवाइ सेवा करे ता किछु पाए मानु ।। (पृ.४७४)

गुरुबचनों का **'प्रतीक' एवं 'जीवित' उदाहरण होता है।**

किसी बरव्शे हुए गुरुमुरव प्यारे ने, इस विषय को बड़े सुन्दर तथा मनमोहक शब्दों में यूं दर्शाया है –

हमारे सतिगुरू जी ने, मनुष्य तथा उसकी शारीरिक आवश्यकताओं को सम्मान दिया है। सिक्रव की सुरति को, दीन एवं दुनिया से ऊपर उठाकर, अपने ज्योति स्वरूप में लगाकर, ऊँचा किया तथा अपने सिक्रव, निर्बाण – गृहस्थी, अतीत फकीर बनाए। उनका 'गृहस्थ – जीवन' सच रवंड वाला बना दिया। सचरवंड का 'रस' तथा 'नाम' का सुरव, इस मृत्यु लोक में ही देकर, 'एहु विसु संसारु' को 'हरि का रूपु' दिरवा दिया ।

सिक्रव का 'घर', नाम – रस का इलाही कोट (किला) है। तीनों लोक में प्रलय हो जाने पर भी, यह इलाही कोट गिर नहीं सकता। कोई चीज़ इस 'नानक – नाव' के 'लंगर' को तोड़ नहीं सकती। यह 'कोट' – ईटों का नहीं, यह 'प्रेम – स्वैपनाओं' का बना हुआ है। सतिगुरू जी ने शरीर के सारे सुरव अपने सिक्रव को प्रदान किये तथा हुकुम किया कि "दम – बदम मेरी याद में जीओ! मैं सदा तुम्हारे अंग – संग हूँ।" ऐसी निरंतर अविचल ज्योति जागृत की, कि सिक्रव का 'हृदय', वह 'मन्दिर' बन गया, जहां 'सदा – मंगल', 'सदा – सवेरा', 'सदा – रवुशी', 'सदा – चाव', तथा 'सदा – अविचल – ज्योति' का प्रकाश है।

सिक्रव, सतिगुरू जी का बनाया हुआ 'सहज – योगी' है, 'प्रीत का फकीर' है, 'सिमरन का बुत' है, सतिगुरू जी का 'सुन्दर – बुर्ज' है, जिस बुर्ज में दम – ब – दम आठों पहर नाम का प्रवाह चलता है तथा इस बुर्ज में सतिगुरू नानक साहिब जी अपने दस – अवतारों में फेरा लगाते हैं, अपनी – अपनी झलक दिरवा जाते हैं। सिक्रव फकीरों का गुरुमुरव जीवन संसार में गुप्त जीवन है, गुरुमुरव को मानो संसार से वास्ता ही नहीं। उनका कार्य, तथा सबसे प्रथम कार्य, सदा तथा दम – ब – दम

'अविचल ज्योति' में रहना है। हाँ जी, वे 'रस के आकाश' तथा 'प्रीत के देश' के वासी हैं, उनको मानों संसार दिखता ही नहीं। सतिगुरू जी ने उठते–बैठते–सोते तथा दम–ब–दम तथा श्वास–श्वास 'नाम' के मार्ग पर डाल कर, सिक्ख को निरन्तर रस में डाला है। 'एमरसन', निरन्तरता को खोजता है, उसके लिए तड़पता है, परन्तु उसको सबसे ऊँचे तथा सुन्दर स्थान पर 'कवि' दिखाई देता है, जहां उसे अविचल ज्योति की विद्युतीय–चमक दिखाई देती है, परन्तु कवि को निरन्तर रस नहीं मिलता। हां जी! 'कवि' गुरुमुखों, संतों के घर का 'भिखारी' है, पता नहीं किस पल, किस प्रीत–मूर्ति ने, कवि के हृदय में फेरा लगाया तथा कवि की सुरति चढ़ उठी तथा चढ़ी हुई सुरति में आप गा उठे या चहक उठे। जो कुछ किया संसार को अच्छा लगा, परन्तु कवियों की सुरति को 'जीवन–दान' देने वाले तथा मृत्त सुरति को 'जीवित' करने वाले, तथा हांजी ! सुरति को निरन्तर अविचल ज्योति, 'अगम्य प्रकाश', 'गुरू नानक–मंडल' में रख देने वाले, 'गुरुमुख संत' ही हैं।

कवि लोग सुरति को खर्च करते हैं, संत लोग रिक्त सुरति को 'भरते' हैं।

कवि लोग विवश हैं तथा अपनी 'सुरति–की–दात' को बांट नहीं सकते।

परन्तु गुरुमुख संत, सुरति के 'दाता' होते हैं।

हमारे सतिगुरू जी ने इसी कारण, कवि बनाने का मार्ग नहीं चलाया। उन्होंने तो गुरुमुख संत बनाने का मार्ग ही दर्शाया है।

'संत' वही है, जिसे गुरू नानक, हां जी कलगियां वाला प्रीतम, प्यार करता है, तथा हां जी, संतों पर सदा अपनी रक्षा का हाथ रखता है।

'संत' वही है, जिसकी रसना पर स्वयं बैठ–सिक्ख को उपदेश करता है।

'संत' वही है, जिसकी वृत्ति सदा, आठों पहर, सतिगुरू जी के सुन्दर 'प्रकाश–मंडल' में रहती है। जिनकी आंखें खुली हैं, पर देख नहीं रहे। जो बोलते हुए भी 'बोल' नहीं रहे, उनमें 'आपा' होता ही नहीं।

हां जी, **'गुरुमुख संत' वह जलती 'मशालें' हैं, वह 'बिजलियां' हैं, जिन्हें सतिगुरू जी ने अपने हाथ में थामा हुआ है, तथा जब उनकी मर्जी होती है तब किसी के दिल की मीनार पर बस जाती है।**

हां जी, गुरुमुख संत वे हैं, जिनसे यदि कोई आग की एक नन्ही सी चिंगारी मांगने आये, तो उसका सारा घर, अन्दर–बाहर, 'अविचल–ज्याति' से जगमगा

उठे, अन्धकार न रहे तथा जीवन, निरन्तर अमुक तेल की बत्ती के समान हो जाये।

'संत' वे इलाही लोग हैं, जिनके साबुत बुत के अनेक टुकड़े हो सकते हैं तथा एक–एक टुकड़ा, वैसे ही 'जीवित' है जैसे साबुत बुत जीवित था।

हाँ जी! **एक पलक झपकने में संतों की दृष्टि लाखों रूहों की सुरति को मदद दे सकती है। ये मात्र इन्सान नही होते, शक्ल सूरत केवल मनुष्यों वाली होती है, परन्तु इनमें मनुष्यों जैसा कुछ भी नहीं होता, केवल 'ईश्वरीय जीवन' हिलोरे मारता है।**

संत सदा ईश्वरीय जीवन के अमृत से भरे रहते हैं यहां टोट कभी नहीं पडती, यहां श्वासों की नौका ईश्वरीय लहरों पर वाहिगुरू धन गुरू नानक कूकती आर पार आती–जाती है।

सिख फकीर के हृदय में सचे पातशाह श्री गुरू नानक साहिब जी का अवतार नित्य फेरे लगाता है शरीर वाले संत, अ...शरीरिक संतों के प्रतिनिधि होते है।

सतिगुरू **नानक जी को मिलने का मार्ग गुरूमुख संतों के चरण पकड कर बाणी की शरण में जाना, बाणी की शरण जाकर श्री गुरू ग्रन्थ साहिब जी की दरगाह में पेश होना तथा फिर दिव्य ज्योति से पिरोये संतों के दरबार पहुँचना।** इन सहायक सत्संगियों को मिलना कभी किसी के पंखों पर कभी किसी के, धुर कलगी वाले की अकाली दरगाह में पहुंचना। बडी दूर की मंजिल सतिगुरू जी ने कदम कदम पर तय की हुई है, सब कुछ पास हो गया है, गुरू ग्रन्थ साहिब जी को माथा टेकते ही, दस पातशाहियों के दर्शन होते हैं।

इस प्रकार यदि सिक्खी मिल जायें तो अविचल ज्योति का देश मिला। 'यहां' से उजड कर वहां जा बसने पर वह अमूल्य जीवन प्राप्त होता है, जिसके लिए एमरसन जैसे संसार के ऊँचे तथा प्रथम श्रेणी के बुद्धि**मान लोग तडप रहे हैं।**

कवियों की सुरति को ऊँचा उठाने के लिए जितनी तथा जिस प्रकार की आवश्यक्ताएं हैं, गुरूमुख संतों को उतनी आवश्यक्ताएं नहीं। यदि वह सामग्री हो तो अच्छा, न हो तो अच्छा। संतों की सुरति सतिगुरू जी ने स्वतंत्र की हुई है। भाई मनी सिंह जी की सुरति, बैलून (गुब्बारे) की भांति उठती ही चली गई ज्यों ज्यों ज्ल्लाद शरीर के टुकडे करता गया नाम रंग में रंगी एवं पक्की हुई सुरति उडान भरती गई।

सिक्रव नाम के रसिक तथा जागृत हुई सुरति वाले फकीर हुए हैं। जितने शहीद हुए, सब की सुरति इतनी पक चुकी थी कि चररवडियों पर चढ कर तथा शरीर के टुकडे टुकडे करवाने पर भी, उरवडती नहीं थी। ऐसा लगातार प्रकाश था तथा इतना उंचा सुन्दर जी का सुन्दर देश था कि जिसके रस में सूली की चुभन का पता ही नहीं लगता था।

'एमरसन' उन नियमों का वर्णन करने का प्रयत्न करता है जिनसे सुरति रस के चढाव में रहे, परन्तु न वह आप जानता है तथा न ही हमें बता सकता है। उसका सारा लेरव एक आह है कि हाय किसी प्रकार वह वस्तु प्राप्त हो, जिसके अंदर होने से यदि हमें शेरों के आगे फेंका जाये, या मस्त हाथी हम पर छोडे जायें, तो दोनों आकर हमारे पैर चूमें! हां जी! धूप में सर्प हमारी छतरियां पकडें, यदि हमें दो पहाडों के बीच बंद कर दिया जायें तो हम कभी कैद ही न हो सकें।

हाँ जी! गुरूमुरव संतों के इलाही जीवन का टुकडा मांगने वाला एमरसन, मुझे तो हाथ बांधें, सांई की दरगाह पर रवडा प्रतीत होता है।

सतिगुरू की फकीरी ढाई अक्षरीय फकीरी है तथा इस फकीरी जीवन की आवश्यक्ताएं भी ढाई अक्षरीय हैं।

फकीरी तो यह है सिमरन और घ्यान के दो अक्षर तथा आधा अक्षर अलिप्त रहने का पढ़ना।

तथा तीन आवश्यकताएँ – कुल्ली, जुल्ली व गुल्ली । एक घर, एक पहनने का वस्त्र तथा एक रवाने को रोटी।

इन तीन वस्तुओं के नाना प्रकार के रंग, फकीरों, संतों की अपनी – अपनी मौज तथा सुरति की रवुशी अनुसार हैं।

'एमसरन' ने जो संकेत दिया है, कि मुझे 'अविचल ज्योति' का जीवन, एक 'रवमीर' सा दिरवता है, यह मुझे बहुत अच्छा लगता है।

हाँ जी! सतिगुरू जी ने सिमरन का पहला कदम ही **'रवमीर'** (जाग) के नियम पर ररवा है। 'सिमरन जीवन', 'इलाही जीवन' का दूसरा नाम है।

बिनु सिमरन जो जीवनु बलना सरप जैसे अरजारी।। (पृ. ७१२)

मैंने मन्त्र का रटन करते हुए कई लोगों को केवल घास के ढेर की भांति जलते हुए देरवा है। इसलिए 'फोकट' तथा 'ज्योति से टूटा' हुआ रटन – सिमरन

नहीं है। यह सिमरन नहीं करते, केवल 'नकल' करते हैं। सिमरन तो सतिगुरू नानक जी का 'बाणी' रूप है। जो सिमरन करता है, वह सतिगुरु जी के 'रूप' में जीता है।

जीवन रूपु सिमरणु प्रभ तेरा ॥ (पृ. ७४३)

तथा हाँ जी! **यह जीवन,** 'खमीर' के नियमों पर आधारित है तथा पलता है। गुरुमुख संतों के 'सिमरन वाले जीवन' का 'टुकड़ा' यदि मिल जाये, उसका 'खमीर' हमें लग जाये, तब हमारे अन्दर दम-बदम 'नाम' जारी हो जाता है। तभी हमारा जीवन, 'सिमरन वाला जीवन' बन सकता है। आठों-प्रहर 'नाम' का जारी रहना, वह निरन्तरता है, जिसकी चाह 'एमरसन' ने प्रकट की थी। 'एमरसन' निरन्तरता को ढूंढता है। परन्तु उसे पता नहीं था कि 'निरन्तरता' सिमरन बिना सम्भव नहीं। सतिगुरू जी के मार्ग में, 'इलाही जीवन की निरन्तर ज्योति', बिना सिमरन के प्रज्वलित नहीं हो सकती।

'सिमरन वाला जीवन' दिव्य ज्याति से परिपूर्ण दम-बदम 'पिरोये' संतों से प्राप्त हो सकता है तथा हाँ जी, इस जीवन का निरन्तर रहना, यह सतिगुरू जी के अटल, दैवीय बिरद के नियम की 'पालना' है, तथा हाँ जी, **प्रारम्भ में,** इस सिमरन **के 'खमीरी जीवन' की रक्षा तथा पालन के लिए, सब प्रकार की रक्षा की आवश्यकता है, जो सतिगुरू - 'सिमरन वाले' को छप्पर फाड़ कर देता** है तथा सिमरन के **जीवन पर फरिश्तों तथा देवी देवताओं का 'पहरा' होता है।**

सतिगुरू जी के घर की 'महिमा' -सिमरन से प्रारम्भ हो गयी। रूह, 'धन गुरू', 'वाहिगुरू' का गीत गाती हुई, मिट्टी, हड्डी, माँस की चार-दीवारी से बाहर निकल खड़ी हुई। मुझे सिमरन वाले की पहली उड़ान, वैसे ही सुन्दर तथा अच्छी लगती है, जैसे चिड़िया के नवजात बच्चे की पहली उड़ान।

हाँ जी! सिक्ख फकीर, विहंगमी-मार्ग पर चलने वाले लोग हैं। जब (नाम के) पंख निकल आते हैं, तब यह उस आकाश में 'उड़ते' हैं- जिसके 'प्रकाश' से -'कवि' जी के (अकल के) 'पंख' जलने लगते हैं।

हाँ जी! 'सिमरन का जीवन' -'खमीर का जीवन' है। यह खमीर गुरसिक्खों से प्राप्त होता है। तभी तो 'आइ मिलु गुरसिख आइ मिलु' की प्रार्थना सतिगुरू जी ने सिखाई है।

गुरसिक्खों, गुरमुखों से खमीर प्राप्त किये बिना सिक्खी नहीं मिल सकती। **'अमृत छकाना' इसी 'गुप्त' 'खमीर' की 'रास' देना है, तथा हां जी! सिक्ख की पहली जरूरत 'सिमरन के खमीर वाला जीवन' है।**

'ध्यान' सिक्ख फकीरों का सरल है–

बै खरीदु किआ करे चतुराई इहु जीउ पिंडु सभु थारे ॥ (पृ. ७३८)

हाँ जी ! सिक्खों का 'ध्यान' – 'प्रीत–निरंकारी' में 'नष्ट' हो जाने का नाम है।

हड्डी, माँस, चमड़ी, मज्जा, मन, बुद्धि, अहंकार तथा काम, क्रोध , लोभ, मोह, इन सब को मोड़–मोड़ कर (वश करके) सतिगुरू की प्रीत के रंग में रंगना, यही सिक्खों का 'ध्यान' है–

'जीते–जी मरे हुए' का नाम – 'सिक्ख' है।

सतिगुरु का बै–खरीद दास बनने का नाम ही 'सिक्ख' है। भाई मँझ जी की साखी याद करो।

सिक्खी 'ध्यान' – सतिगुरू जी का 'बन जाने' का नाम है। तथा **अखंडाकार प्रीतम, सतिगुरू से न बिछुड़ना हो –** 'ध्यान' है।

तीसरा यह, कि जो सतिगुरू का 'सिक्ख' बना – **जानों मालिक ने संसार से उसकी 'नाव के रस्से' एकदम खोल दिये ।**

'न मैं किसी का – न मेरा कोई', जैसा 'कोरा' बनना जरूरी है, अन्दर से किसी सांसारिक प्राणी से प्रीत नहीं लगानी, न ही रिश्तों की रस्सियां कसनी हैं।

हाँ जी ! सिक्खी फकीरी बड़ी नाजुक 'अवस्तु' है, जो अन्य वस्तुओं के 'छुह' जाने से मैली हो जाती है।

सिक्ख फकीरों को दुनिया से (अहम्ग्रस्त प्राणियों की भांति) 'नेकी' करने का 'बुखार' कभी नहीं चढ़ता। उनकी आंखें प्रत्येक व्यक्ति के पीछे 'प्रभु' को खड़े हुए देखती हैं, इसलिए वह 'अलिप्त' हो जाते हैं।

यह एक संकरा सा मार्ग है, परन्तु 'ज्योति निरंकारी' के 'अविचल नगर' को यही राह जाता है।

वास्तव में यह 'अलिप्त वासी' ही, संसार का भला करने वाले हैं।

हाँ जी ! यह दुनिया का भला करने वाले, 'अविचल नगर' पहुँचे तथा वहाँ

के वासी हो गये। पर, उनके नाम निशान की, जगत के इतिहासकारों को खबर नहीं। संसार का असली भला करने वाले गुफाओं से निकलकर सूली पर चढ़ गये, उनके 'शीश' तलवार से उन लोगों ने उड़ाए, जिनका वह भला करने आये थे! लोग परोपकार करने को उठ भागते हैं, जैसे थूक से भल्ले पक जाएंगे।

लोग भाईचारा (society) बनाने के यत्न में हैं, पर सच्च तो यह है कि **जहां एक व्यक्ति को बनाने के लिए क्षण–क्षण, धुर दरगाह से संदेश आते हैं, घंटे–घड़ियाल बजते हैं, कई फरिश्ते, देवते छाया करते हैं, तब कहीं अनेक जन्मों पश्चात, एक 'रूह' तैयार होती है।** इसी कारण 'सच के अभिलाषी', सिमरन वाले दुनिया से सदा अलिप्त रहते हैं।

साचि नामि मेरा मनु लागा ॥
लोगन सिउ मेरा ठाठा बागा ॥१॥
बाहरि सूतु सगल सिउ मउला ॥
अलिपतु रहउ जैसे जल महि कउला ॥१॥ रहाउ॥
मुख की बात सगल सिउ करता ॥
जीअ संगि प्रभु अपुना धरता ॥२॥
दीसि आवत है बहुतु भीहाला ॥
सगल चरन की इहु मनु राला ॥३॥
नानक जनि गुरु पूरा पाइआ ॥
अंतरि बाहरि एकु दिखाइआ ॥४॥ (पृ. ३८४)

जिस गुरसिक्ख ने उपरोक्त 'ढाई अक्षर' पढ़ लिए, उसकी सुरति एक विशेष अन्दाज में रहती है। अपने केन्द्र से नीचे कभी नहीं उतरती, यदि कभी नीचे उतर आये तो अंग 'मुड़–मुड़' जाते हैं, रोग सा लग जाता है,

"जै तनि बाणी विसरि जाइ॥
जिउ पका रोगी विललाइ॥" (पृ. ६६१)

तथा सतिगुरू की बख्शिश द्वारा, 'सत्संग' द्वारा, उनके प्रेम द्वारा, श्री गुरू ग्रन्थ साहिब के दर्शनों द्वारा तत्काल अपनी ऊँचाई पर आ जाती है।

जिस प्रकार कवियों की सुरति कभी–कभी चढ़ती है, उसी प्रकार संतों की 'सुरति' कभी–कभी ही अपने नियत स्तर से, जो बहुत ही ऊँचा है, नीचे उतरती है, पर उस समय उनके लिए तो 'कयामत' ही आ जाती है।

'नाम' रसियों के लिए तो क्षण–क्षण के घड़ियाल हैं, डांट फटकार लगाते–लगाते ही फूल बरसाने लगते हैं, फकीर का 'सिंहासन'–बादशाह और शेर के सिंहासन जैसा होता है, बेनिआज़ होता है, वह सदा 'नाम के नशे' में रहता है। इस 'नशे' की टोट नहीं। यदि कोई, फकीर से 'छुह' भी जाए–उसका भी 'भला' हो जाता है, जैसे चन्दन को छूते ही सुगन्धि आने लगती है।

वास्तविक सिक्ख जीवन–'अविचल ज्योति' है, दुनिया इसके लिए तरस रही है। सतिगुरू **कृपा करें, हम दुनियाँ के धंधों में न फँसे, हाँ जी,** दुनिया हमारे **चरण धोये तथा हम ज्योति की 'मशालें' बनकर–सारे संसार को प्रकाश दें।**

सिक्खी धारण करनी कठिन अवश्य है, पर है वह 'वस्तु', जिसे पाने के लिए सारा संसार तड़प रहा है, परन्तु यह मिलती नहीं।

हमें दरगाह का पता है, परन्तु हम मूर्ख बालकों की भांति–धर्मशाला छोड़, हरिमन्दिर को पीठ दिखा, दुनिया की ढलती प्रतिछाया की ओर दौड़ना, दयानतदारी समझते हैं।

मेरा प्रयोजन यह नहीं कि हमने, जानवरों की भांति, जंगल छानने है। नहीं, हमारा घर होना है, जिसका सबसे बड़ा तथा सुन्दर कमरा 'धर्मसाल' होना है, वहां हमारे सतिगुरू जी का दरबार होना है तथा हम–मां, पुत्र, पत्नि, पति, बच्चे–बच्चियों ने सतिगुरू के सेवक बन, हुकुम–बद्ध गुलामों की भांति, साथ वाले कमरों में रहना है। वह घर, जिसका 'ड्राईंग हॉल' (गोल कमरा) 'धर्मसाल' है, सिक्ख का है। नहीं! 'सिक्ख' सतिगुरू जी का पहले तथा और सब कुछ 'पीछे'। मिथ्या मान–सम्मान तथा दुनिया की गुटबन्दियों से हमने मुंह मोड़ना है जी । अन्दर–बाहर, सतिगुरू जी की 'धर्मसाल' की सेवा के लिए, हमने जीना है जी। हमारे घरों में राग, रंग, खुशियां, आनन्द, अविचल ज्योति वाले होने हैं जी।

सतिगुरू कृपा करें, यदि यह हो – तो हमारा पंथ समस्त संसार के दुख दूर करने में समर्थ हो । सतिगुरू सहायक हों।।

सूख महल जा के ऊच दुआरे।।
ता महि वासहि भगत पिआरे।।१।।
सहज कथा प्रभ की अति मीठी।।
विरलै काहु नेत्रहु डीठी ।।१।। रहाउ।।

तह गीत नाद अखारे संगा।।
ऊहा संत करहि हरि रंगा ।।२।।
तह मरणु न जीवणु सोगु न हरखा।।
साच नाम की अंम्रित वरखा ।।३।।
गुहज कथा इह गुर ते जाणी।।
नानकु बोलै हरि हरि बाणी।।४।। (पृ. ७३९)

माई री पेखि रही बिसमाद ।।
अनहद धुनी मेरा मनु मोहिओ अचरज ता के स्वाद ।।१।। रहाउ।।
मात पिता बंधप है सोई मनि हरि को अहिलाद ।।
साधसंगि गाए गुन गोबिंद बिनसिओ सभु परमाद ।।१।।
डोरी लपटि रही चरनह संगि भ्रम भै सगले खाद ।।
एकु अधारु नानक जन कीआ बहुरि न जोनि भ्रमाद ।।२।। (पृ.१२२६)

आउ जी तू आउ हमारै हरि जसु स्त्रवन सुनावना ।।१।। रहाउ।।
तुधु आवत मेरा मनु तनु हरिआ हरि जसु तुम संगि गावना ।।१।।
संत कृपा ते हिरदै वासै दूजा भाउ मिटावना ।।२।।
भगत दइआ ते बुधि परगासै दुरमति दूख तजावना ।।३।।
दरसनु भेटत होत पुनीता पुनरपि गरभि न पावना ।।४।।
नउ निधि रिधि सिधि पाई जो तुमरै मनि भावना ।।५।।
संत बिना मै थाउ न कोई अवर न सूझै जावना ।।६।।
मोहि निरगुन कउ कोइ न राखै संता संगि समावना ।।७।।
कहु नानक गुरि चलतु दिखाइआ मन मधे हरि हरि रावना ।।८।।
(पृ. १०१८)

(समाप्त)